

मानव व्यवहार दर्शन

लेखकीय

मानव में साम्यतः पाये जाने वाले रूप, बल एवं बुद्धि के योगफल से निर्मित पद एवं धन तथा इन सबके योगफल से उत्पन्न शिष्टताओं एवं भौगोलिक संरचनाओं व तदनुसार आवश्यकताओं के आधार पर परस्पर सामरस्यता की कामना पायी जाती है ।

शिष्टता की वैविध्यता, सम्पत्ति एवं स्वत्व की विस्तार-प्रवृत्ति की उत्कटता के अनुसार मानव में सीमाएं दृष्टव्य है । मानव में प्रत्येक सीमित संगठन, प्रधानतः भय-मुक्ति होने के उद्देश्य से हुआ है । सर्वप्रथम मानव ने जीव-भय एवं प्राकृतिक भय से मुक्त होने के लिये साधारण (आहार, आवास, अलंकार) एवं हिंसक साधनों का आविष्कार किया है । इन हिंसक साधनों से मानव की परस्परता में अर्थात् परस्पर दो मानव, परिवार वर्ग एवं समुदायों के संघर्ष में प्रयुक्त होना ही युद्ध है । इसके मूल में प्रधानतः संस्कृति, सभ्यता, विधि एवं व्यवस्था की वैविध्यता है । साथ ही उसके अनुसरण में स्वत्व एवं सम्पत्ति के विस्तारीकरण की प्रवृत्ति भी है । यही केन्द्र-बिन्दु है ।

मानव, मानव के साथ संघर्ष करने के लिये, प्रत्येक संगठित इकाई अर्थात् परिवार एवं वर्ग अपनी सभ्यता एवं संस्कृति को श्रेष्ठ मानने के आधार पर स्वत्व और सम्पत्तिकरण के विस्तारीकरण को न्याय-सम्मत स्वीकार लेता है, फलतः उसी का प्रतिपादन करता है और आचरण एवं व्यवहार में प्रकट करता है । यही स्थिति प्रत्येक सीमा के साथ है ।

इस ऐतिहासिक तथ्य से ज्ञात होता है कि प्रत्येक सामुदायिक इकाई के मूल में सार्वभौमिकता को पाने का शुभ संकल्प है । उसे चरितार्थ अथवा सफल बनाने का उपाय सुलभ हुआ है, जो “मध्यस्थ दर्शन” के रूप में मुखरित हुआ है । यह मानवीयतापूर्ण सभ्यता, संस्कृति, विधि एवं व्यवस्था के लिए प्रमाणों के आधार पर वर्तमान बिन्दु में दिशा को स्पष्ट करता है ।

“वर्ग विहीन समाज को पाने के साथ ही प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाने वाली न्याय पिपासा, समाधान एवं समृद्धि वांछा एवं सहअस्तित्व में पूर्ण सम्मति को सफल बनाने की आप्त कामना के आधार पर मध्यस्थ दर्शन को प्रकट करने का शुभ अवसर मुझे प्राप्त हुआ है ।”

“सहअस्तित्व सूत्र व्याख्या ही स्वयं में सामरस्यता है ।” सामरस्यता की स्थिति रूप, गुण, स्वभाव एवं धर्म की साम्यता समाधान पर आधारित है, जो दृष्टव्य अर्थात् समझ में आता है, जैसे पदार्थावस्था की प्रकृति में रूप सामरस्यता, वनस्पति अर्थात् प्राणावस्था की प्रकृति में गुण सामरस्यता, जीवावस्था की प्रकृति में परस्पर जीने की आशा व स्वभाव सामरस्यता का प्रकटन स्पष्ट है । धर्म सामरस्यता ही मानव में अखंडता है । इसके अतिरिक्त अन्य अवस्थाओं में पाये जाने वाले धर्म, स्वभाव, गुण एवं रूप की सीमा में सामरस्यता की पूर्णता को पाना संभव नहीं है, यदि संभव होता तो मानव के पीछे की अवस्थाओं में सहअस्तित्व की तृप्ति को जानना, मानना था, किन्तु इनका न होना देखा जा रहा है । फलतः अग्रिम विकास में संक्रमण एवं पद में आरुढ़ता दृष्टव्य है । मानव में ही धर्म सामरस्यता को पाने की संभावना स्पष्ट हुई है । इसको पा लेना ही मानव का परमोद्देश्य है, उसे सर्व सुलभ कर देना ही मध्यस्थ दर्शन का अभीष्ट है । धर्म सामरस्यता का तात्पर्य सर्वतोमुखी समाधान सम्पन्न होने से है ।

“मानव-जीवन सफल हो”

“अन्य में संतुलन प्रमाणित हो”

अध्याय - एक

सहअस्तित्व

* मैं नित्य, सत्य, शुद्ध एवं बुद्ध व्यापक सत्ता में सम्पृक्त जड़-चैतन्य प्रकृति को अनुभव पूर्वक स्मरण करते हुए “मानव व्यवहार दर्शन” का विश्लेषण करता हूँ ।

:: नित्य :- सदा-सदा एक सा विद्यमान है ।

:: सत्य :- सदा-सदा एक सा भासमान है ।

:: शुद्ध :- सदा-सदा एक सा सुखप्रद (अनुभव में) है ।

:: बुद्ध :- सदा-सदा एक सा बोधगम्य है ।

:: व्यापक सत्ता:- सदा-सदा प्रकृति होने और न होने के स्थलों में वैभव ।

सत्ता, जड़-चैतन्य में पारगामी व परस्परता में पारदर्शी है । सत्तामयता को परमात्मा, ईश्वर, लोकेश, चेतना, ज्ञान, शून्य, निरपेक्ष ऊर्जा, पूर्ण संज्ञा है ।

:: सम्पृक्त:- सत्ता में डूबा, भीगा, घिरा हुआ जड़-चैतन्य प्रकृति है । यही सहअस्तित्व है, सहअस्तित्व ही नित्य है, यही परम सत्य है । सहअस्तित्व में ही नियम, नियंत्रण, संतुलन, न्याय, धर्म, सत्य स्पष्ट है ।

:: जड़ :- इकाईयाँ जो अपनी लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई की सीमा में क्रियाशील है ।

:: चैतन्य :- इकाईयाँ जो अपने लंबाई, चौड़ाई, ऊँचाई की सीमा से अधिक स्थली में पुँजाकार रूप में क्रियाशील है । यहाँ स्थली का तात्पर्य सत्तामयता है ।

* जागृत मानव ही दृष्टा पद प्रतिष्ठा में गण्य है ।

:: मानव :- मनाकार को साकार करने तथा मनः स्वस्थता का आशावादी और प्रमाणित करने वाले को मानव संज्ञा है ।

:: व्यवहार :- एक से अधिक मानव एकत्र होने के लिए अथवा होने में जो श्रम नियोजन है उसे व्यवहार संज्ञा है ।

:: दर्शन :- दृष्टि से प्राप्त समझ, अवधारणा और अनुभव ही दर्शन है ।

:: दृष्टि :- वास्तविकताओं को देखने, समझने, पहचानने और मूल्यांकन करने की क्रिया की दृष्टि संज्ञा है ।

:: विश्लेषण :- परिभाषाओं का प्रयोजन के अर्थ में व्याख्या की विश्लेषण संज्ञा है ।

:: परिभाषा :- अर्थ को इंगित करने के लिए प्रयुक्त शब्द समूह की परिभाषा संज्ञा है ।

* व्यापक एक और इकाईयाँ अनंत है ।

:: व्यापक :- जो सर्व देश - काल में विद्यमान है तथा नित्य वर्तमान है ।

:: इकाई :- छः ओर से (सभी ओर से) सीमित पदार्थ पिण्ड की इकाई संज्ञा है ।

व्यापक वस्तु में सम्पूर्ण इकाईयाँ अविभाज्य रूप में वर्तमान हैं ।

:: अनंत :- संख्या में अग्राह्य क्रिया की अनंत संज्ञा है जिसको मानव गिनने में असमर्थ है अथवा गिनने की आवश्यकता नहीं बनती, यही अनन्त है ।

* व्यापक सत्ता अथवा परमात्मा जागृत मानव में, से, के लिये कार्य-व्यवहार काल में नियम के रूप में, विचार काल में समाधान के रूप में, अनुभव काल में आनंद के रूप में और आचरण काल में न्याय के रूप में प्राप्त है क्योंकि सत्ता में संपूर्ण प्रकृति अविभाज्य रूप में विद्यमान है । यही सहअस्तित्व है ।

:: काल:- क्रिया की अवधि की काल संज्ञा है ।

:: नियम:- क्रिया की नियंत्रण पृष्ठभूमि ही नियम है ।

:: समाधान:- क्यों और कैसे की पूर्ति (उत्तर) ही समाधान है ।

:: आनंद :- सहअस्तित्व रूपी परम सत्यानुभूति ही आनंद है ।

:: न्याय :- परस्परता में मानवीयतापूर्ण व्यवहार की न्याय संज्ञा है ।

X मानवीयतापूर्ण व्यवहार:- धीरता, वीरता, उदारता, दया, कृपा, करुणा पूर्ण स्वभाव; न्याय, धर्म एवं सत्यतापूर्ण दृष्टि और वित्तेषणा, पुत्रेषणा एवं लोकेषणात्मक विषय से युक्त व्यवहार ही मानवीयतापूर्ण व्यवहार है ।

@ अस्तित्व में, से, के लिए जानने, पहचानने और अनुभव करने का प्रयास व अध्ययन मानव करता रहा है एवं करता रहेगा ।

:: ज्ञान को अनुभव काल में आनंद; सर्वत्र एक सा अनुभव में आने के कारण ईश्वर; ज्ञान में समस्त क्रियायें संरक्षित और नियंत्रित होने के कारण लोकेश; सर्वत्र एक सा विद्यमान होने के कारण व्यापक; वस्तु चैतन्य होने के साथ चेतना; आत्मा से भी सूक्ष्मतम होने के कारण परमात्मा; प्रत्येक वस्तु सत्ता में ही सचेष्ट, सक्रिय रहने के कारण से इसे निरपेक्ष ऊर्जा तथा अपरिणामिता के कारण पूर्ण एवं सत्य संज्ञा है ।

* सहअस्तित्व में अनुभव ही ज्ञान का उद्घाटन है । सहअस्तित्व में अनुभव में, से, के लिए अध्ययन है । ज्ञान ही विवेक एवं विज्ञान रूप में प्रमाण है । यही ज्ञानावस्था में मानव सहज मौलिकता है ।

X ज्ञान मानव जीवन में अनुभव स्थिति में आनन्द सहज वैभव प्रमाण है । अनुभव पूर्वक अभिव्यक्ति ही ज्ञान है । ज्ञान ही जागृत मानव में समस्त सकारात्मक क्रियाओं का आधार अथवा प्रेरणा स्त्रोत है ।

* ज्ञान ही व्यापक सत्ता है । इसकी ही शून्य संज्ञा है ।

@ क्रियाहीनता की स्थिति की शून्य संज्ञा है तथा ज्ञान स्वयम् क्रिया न करते हुए अथवा क्रिया न होते हुए भी समस्त क्रियाओं का आधार अथवा प्रेरणा स्त्रोत है । ज्ञान ही शून्य और शून्य ही ज्ञान है | अतः ज्ञान और शून्य दोनों एक ही सिद्ध होते हैं तथा इसमें अवस्थित होने से ही क्रिया के लिए प्रेरणा प्राप्त है । ज्ञान अथवा शून्य से रिक्त और मुक्त इकाई नहीं है ।

स्रोत: मानव व्यवहार दर्शन

मध्यस्थ दर्शन (सहअस्तित्ववाद)

प्रणेता एवं लेखक: अग्रहार नागराज

सम्पूर्ण वांडमय डाउनलोड:

www.madhyasth.org

www.bit.ly/dpsroot